बेरोजगारी पर महामहिम की चिन्ता की वास्तविकता

● तपिश

गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर महामहिम राष्ट्रपति ने देश में बढ़ती बेरोजगारी पर बड़ी चिन्ता जतायी है। दरअसल यह शासक वर्गों के मन में बैठा हुआ डर ही है जो राष्ट्रपति महोदय के भाषण में उतर आया। उन्हें डर है कि करोड़ों नौजवान हाथों को अगर काम नहीं मिलेगा तो वे हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं रहेंगे। जब कोई व्यवस्था अपनी लुटेरी नीतियों के चलते करोड़ों नौजवानों की जिन्दगी को अन्धेरी सुरंग में ठेल देने पर आमादा हो जायेगी तो एक न एक दिन ये नौजवान अपने करोड़ों हाथों से उसे ठेलकर इतिहास की सुरंग में पहुँचा देंगे। यही डर है जो शासकों को बेचैन किये हुए है।

वर्ष 2020 तक देश को एक महाशक्ति बना देने के नुस्खे सुझाने वाले वैज्ञानिक राष्ट्रपति को उन लुटेरी आर्थिक नीतियों के बुनियादी ढाँचे से कोई शिकायत नही हैं, जो देश में बेरोजगारी का महासागर तैयार करने के लिये जिम्मेदार हैं। उन्हें विकास की उस अवधारणा में कोई खोट नजर नहीं आता जिसे "रोजगारविहीन विकास" कहा जा रहा है। यानी ऐसा विकास जो रोजगार नहीं पैदा करेगा। भूमण्डलीकरण के दौर में विकास की यह नयी अवधारणा है जिसमें अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर तो आगे बढ़ती है, लेकिन रोजगार नहीं बढ़ता। देश का सकल घरेलू उत्पाद (जी डी पी) बढ़ता है, पूँजी निर्माण बढ़ता है, सट्टा बाजार का कारोबार बढ़ता है लेकिन रोजगार नहीं बढ़ता। विकास की इसी अवधारणा के बूते महामहिम देश को महाशक्ति बनाने का ख्वाब दिखा रहे हैं। साथ ही चिन्तित भी हो रहे हैं कि रोजगार नहीं बढ़ रहा।

आखिर रोजगार कैसे बढ़े? अपनी इस चिन्ता को दूर करने के लिये महामहिम ने केन्द्र सरकार को कुछ सुझाव भी दिये हैं। इन सुझावों पर देश के राष्ट्रीय कहे जाने वाले अखबारों ने गदगद भाव से सम्पादकीय लिखे हैं और उम्मीद जतायी है कि केन्द्र सरकार महामहिम की चिन्ताओं और सुझावों पर गम्भीरता से विचार करेगी। इस उम्मीद की बुनियाद यह है कि राष्ट्रपति राष्ट्र के नाम जो सम्बोधन करते हैं उससे आम तौर पर केन्द्र सरकार की सहमति हुआ करती है।

इस मुगालते में मत रहिये कि महामहिम ने रोजगार बढ़ाने के लिये बन्द कारखानों को खोलने, मनमानी छँटनी पर रोक लगाने या सरकारी कारखानों को देशी-विदेशी पूँजीपतियों को कौड़ियों के भाव बेचने से रोकने जैसा कोई सुझाव दिया है। महामहिम को इन सबसे कोई गुरेज नहीं है। उन्होंने सुझाव दिया है कि सरकार बंजर भूमि पर बड़े पैमाने पर पेड़ लगवाये, जलस्रोतों की हिफाजत करे, गाँवों में स्वास्थ्य विकास योजनाएँ लागू करे, बड़े पैमाने पर बाँस उगाये और ग्राम पंचायतों का कम्प्यूटरीकरण करे। यानी कुल मिलाकर गाँवों की ओर ध्यान दे। इससे रोजगार तो पैदा ही होगा, साथ ही गाँवों से शहरों की ओर पलायन रुकेगा। यानी रोजगार के बारे में महामहिम ने अपनी सारी चिन्ता का बोझ सरकारी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के कन्धों पर लाकर पटक दिया है। महामहिम द्वारा पेश किये गये रोजगार बढ़ाने के इन सुझावों पर बरबस यह क़हावत याद आती है--"कोयले में आग लगे, सोने पे छापा।"

देश में बेरोजगारी की भयावहता के मद्देनजर महामहिम के इन सुझावों की आप खिल्ली उड़ा सकते हैं लेकिन आपको भूलना नहीं चाहिए कि महामहिम राष्ट्रपति वैज्ञानिक भी हैं, मिसाइलमैन हैं। सो, आपको इन सुझावों के पीछे छिपे गहरे रहस्य की छानबीन गहराई से करनी चाहिये।

यह महज एक संयोग नहीं है कि राष्ट्रपति के सम्बोधन और वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम के पिछले बजट भाषण में काफी समानता है। दरअसल जब से कांग्रेसी नेतृत्व वाली नयी सरकार ने केन्द्र में कुर्सी सम्भाली है तभी से बार-बार वह अपने गाँव-प्रेम का प्रदर्शन करती रहती है। इस गाँव-प्रेम के पीछे न तो किसानों की खुशहाली की चिन्ता है और न ही रोजगार बढ़ाने की। इसके पीछे पहली मुख्य वजह है देशी-विदेशी पूँजी को मुनाफा पीटने के लिये नया विशाल बाजार मुहैया कराना। पिछले दिनों कई सर्वेक्षणों में भी यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि शहरों के मुकाबले गाँवों में उपभोक्ता मालों की खपत की वृद्धि दर तेज रही है। देशी-विदेशी पूँजीपतियों की निगाहें इसी विशाल उपभोक्ता बाजार पर टिकी हैं। जाहिर है इसके लिये गाँव के लोगों की आमदनी बढ़ाना जरूरी है। इसी को ध्यान में रखते हुए सरकार नयी-नयी ग्रामीण विकास योजनाओं के बारे में सोच रही है। सरकार की रोजगार गारण्टी योजना के पीछे भी चुनावी वादे को पूरा करने की नौटंकी के साथ-साथ गाँवों में बाजार विस्तार की असल मंशा काम कर रही है। महामहिम ने भी इसी पर निशाना साधा है।

सरकार और महामहिम के गाँव प्रेम की दूसरी वजह यह डर है कि अगर गाँव की बेरोजगार नौजवान आबादी को तरह-तरह की ग्रामीण विकास योजनाओं में न उलझाया गया तो वे रोजगार की तलाश में भाग-भाग कर औद्योगिक महानगरों में पहुँचेंगे जहाँ पहले से ही उजरती मजदूरों का महासागर हिलोरे ले रहा है। इन महानगरों में भी जब उन्हें फैक्टरी-दर-फैक्टरी काम की तलाश में भटकना पड़ेगा तो उनकी हताशा विस्फोटक दिशा में मुड़ सकती है। इसलिये हरमुमकिन कोशिश कर उन्हें गाँवों में ही रोके रखा जाये।

लेकिन विडम्बना यह है कि शासक वर्गों की मंशा पूँजीवादी विकास के निर्मम तर्क के रास्ते में निर्णायक रुकावट बनकर खड़ी नहीं हो सकती। पूँजी हर-हमेशा अपनी अन्दरूनी गति के नियमों से संचालित होती है। यह मुनाफे की कभी न मिटने वाली हवस ही है जो दुनिया भर के पूँजीपतियों को भूमण्डलीकरण की लुटेरी आर्थिक नीतियों को लागू करने के लिये मजबूर कर रही है। और ये नीतियाँ पिछड़े से पिछड़े पूँजीवादी देशों को खींचकर उस मुकाम पर खड़ा किये दे रही

(पेज 50 पर जारी)

देश की सुरक्षा के नाम पर वर्दी पहनाकर इंसान को हैवान बना देती है यह मशीनरी

22 जनवरी की सुबह शिकोहाबाद स्टेशन पर पांच यात्रियों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा क्योंकि उन्होंने फरक्का एक्सप्रेस की उस सामान्य बोगी में चढ़ने की जुर्रत की, जिसमें भारतीय सेना के कुछ जवान पहले से सफर कर रहे थे। कहा जाता है कि यात्रियों की उस जनरल डिब्बे में सफर कर रहे फौजियों से कहासुनी हो गई और इससे गुस्साये जवानों ने छः यात्रियों को ट्रेन से नीचे फेंक दिया, जिनमें पाँच बगल वाली पटरी पर आ रही संपूर्ण क्रान्ति एक्सप्रेस के नीचे आकर मारे गये। एक व्यक्ति गम्भीर रूप से घायल हो गया। यह था अन्यायी, जुल्मी पूँजीवादी व्यवस्था के एक सबसे छोटे वर्दीधारी प्यादे से आम जन के टकराने का परिणाम!

ऐसा नहीं है कि वर्दीधारी चाहे वह पुलिस के हों या फौज के, किसी बाहरी दुनिया से आते हैं। वह इसी समाज के होते हैं और उनका बड़ा हिस्सा आम जनता से आता है। फिर ऐसा क्यों होता है कि ये सिपाही-हवलदार जैसे एकदम निचले पायदान पर खड़े वर्दीधारी भी आमजन से इतना विमुख हो जाते हैं और कभी-कभी तो इनमें से कोई मानवद्वेषी अपराध तक कर बैठता है। पुलिस की वर्दी की छाया तक से आम नागरिक बचता है। भारतीय सेना देश के जिन हिस्सों में कानून व्यवस्था को बनाये रखने के नाम पर भेजी जाती है, वहाँ से उसको वापस बैरकों में भेजने की माँगें उठने लगती हैं। मणिपुर इसका ताजा उदाहरण है(जहाँ सेना के खिलाफ पनपे आक्रोश और बेबसी की चरम अभिव्यक्ति था, वहाँ की कुछ माँओं द्वारा पूर्ण निर्वस्त्र होकर किया गया वह प्रदर्शन जिसमें बैनर पर लिखा था 'भारतीय सेना आओ हमारा बलात्कार करो'।

दरअसल, सेना और पुलिस का पूँजीवादी समाज में मुख्य काम होता है मुनाफाखोरों के लुटेरे निजाम को बचाये रखना। यह काम करने वालों को नट-बोल्ट की तरह तैयार किया जाता है। यह नहीं भूलना चाहिए कि सन् 47 की तथाकथित आजादी के बाद आज भी पुलिस-फौज का वही ढाँचा बरकरार रखा गया। आज भी उसी तरह की ट्रेनिंग देकर, आम जन से काटकर इंसान को आज्ञाकारी यंत्रमानव में तब्दील कर दिया जाता है। उसे वर्दीधारी और डण्डाधारी बनाकर शासक बन जाने और राज करने का भ्रम दे दिया जाता है। जब ऊपर वाले यानी शासक वर्ग की लूट और ऐयाशियों को एक निचले स्तर का वर्दीधारी देखता और समझता है तो वह भी अपने डण्डे के कुशल प्रयोग के लिए प्रेरित होता है। और कुछ नहीं मिलता तो वह गरीब जनता पर ही रौब गालिब कर सत्ता सुख भोग लेता है। इस सबके बावजूद यह भी सच है कि पूँजीवाद द्वारा गरीब की आत्मा को कुचल डालने की लाख कोशिशों के बावजूद इंसानियत का गला नहीं घोंटा जा सकता। हरचंद प्रयास के बाद भी हर इंसान को यंत्रमानव नहीं बनाया जा सकता। कुछ लोगों के तर्क, विवेक और आत्मा को भले ही नष्ट कर दिया जाय।

शिकोहाबाद कांड के अपराधी फौजियों को सजा देने की माँग करते हुए यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि पूँजीवाद ही ऐसे अपराधियों को पैदा करता है। हमारे घरों में घुसकर हमारे बेटे-बेटियों को हमसे दूर ले जाता है, वह उनकी आत्माओं पर प्रहार करता है। इसलिए असली अपराधी की शिनाख्त भी उतनी ही जरूरी है, जितना इन घटनाओं के खिलाफ आवाज उठाना।

बेरोजगारी पर महामहिम की चिन्ता की वास्तविकता

(पेज 49 से जारी)

हैं जहाँ गाँवों की विशाल छोटी-मँझोली खेतिहर आबादी उजड़-पजड़कर शहरी औद्योगिक केन्द्रों की ओर पलायन कर रही है। पूँजीवादी विकास का लाजिमी नतीज़ा है रोजगार विहीन विकास। दूसरे शब्दों में, आज बेरोजगारी विश्व पूँजीवाद की एक लाइलाज बीमारी बन चुकी है। विश्व पूँजीवादी तंत्र के खात्मे के साथ ही इस बीमारी का खात्मा हो सकता है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। सो महामहिम और उनकी बिरादरी की चिन्ताएँ आनेवाले दिनों में कम होने के बजाय बढ़ने ही वाली हैं।

रोजगार के बारे में शासक वर्गों के नुमाइन्दों की फर्जी चिन्ताओं और घड़ियाली आँसुओं से मेहनतकशों को कोई भ्रम पालने की जरूरत नहीं है। जब तक देश के समूचे उत्पादन तंत्र, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे पर मेहनतकशों का नियंत्रण नहीं कायम होगा तब तक बेरोजगारी की समस्या से निजात नहीं पायी जा सकती। जब देश में मेहनतकशों की सत्ता कायम होगी केवल तभी एक ऐसी अर्थव्यवस्था का ढाँचा खड़ा किया जा सकता है जिसमें देश में उपलब्ध विपुल श्रम एवं प्राकृतिक सम्पदा का योजनाबद्ध ढंग से नियोजन कर हर हाथ को काम दिया जा सकता है और करोड़ों नौजवानों की ऊर्जा को एक नया भारत बनाने की दिशा में लगाया जा सकता है। इस अर्थव्यवस्था में मुनाफे के लिये कोई गुंजाइश नहीं होगी। केवल समाज की जरूरतें उसके केन्द्र में होंगी।